# पार्श्व और महावीर का शासन-भेद

मुनि नथमलजी

भगवान पार्श्व और महावीर के शासन-भेद का विचार हम निम्न तथ्यों के आधार पर करेंगे :—

१. **चातुर्याम और पंच महाव्रत**—प्राग्-ऐतिहासिक-काल में भगवान ऋषभ ने पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया था, ऐसा माना जाता है। ऐतिहासिक काल में भगवान पार्श्व ने चातुर्याम-धर्म का उपदेश दिया था। उनके चार याम ये थे—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, बहिस्तात् आदान-विरमण : बाह्य-वस्तु के ग्रहण का त्याग।[1] भगवान महावीर ने पांच महाव्रतों का उपदेश दिया। उनके पाँच महाव्रत ये हैं--अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।[2] सहज ही प्रश्न होता है कि भगवान महावीर ने महाव्रतों का विकास क्यों किया? भगवान पार्श्व की परंपरा के आचार्य कुमार श्रमण केशी और भगवान महावीर के गणधर गौतम जब श्रावस्ती में आए, तब उनके शिष्यों को यह संदेह उत्पन्न हुआ कि हम एक ही प्रयोजन से चल रहे हैं, फिर यह अन्तर क्यों? पार्श्व ने चातुर्याम धर्म का निरूपण किया और महावीर ने पांच महाव्रत-धर्म का, यह क्यों?[3]

कुमार श्रमण केशी ने गौतम से यह प्रश्न पूछा तब उन्होंने केशी से कहा—"पहले तीर्थंकर के साधु ऋजु-जड़ होते हैं। अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र-जड़ होते हैं। बीच के तीर्थंकरों के साधु ऋजु-प्राज्ञ होते हैं, इसलिए धर्म के दो प्रकार किए हैं।

"पूर्ववर्ती साधुओं के लिए मुनि के आचार को यथावत् ग्रहण कर लेना कठिन है। चरमवर्ती साधुओं के लिए मुनि के आचार का पालन कठिन है। मध्यवर्ती साधु उसे यथावत् ग्रहण कर लेते हैं...और उसका पालन भी वे सरलता से करते हैं।"[4]

इस समाधान में एक विशिष्ट ध्वनि है। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि जब भगवान पार्श्वनाथ के प्रशिष्य अब्रह्मचर्य का समर्थन करने लगे, उसका पालन कठिन हो गया तब उस स्थिति को देखकर भगवान महावीर को ब्रह्मचर्य को स्वतंत्र महाव्रत के रूप में स्थान देना पड़ा।

भगवान पार्श्व ने मैथुन को परिग्रह के अंतर्गत माना था।[5] किन्तु उनके निर्वाण के पश्चात् और भगवान महावीर के तीर्थंकर होने से थोड़े पूर्व कुछ साधु इस तर्क का सहारा ले अब्रह्मचर्य का समर्थन करने लगे कि भगवान पार्श्व ने उसका निषेध नहीं किया है। भगवान महावीर ने इस कुतर्क के निवारण के लिए स्पष्टतः ब्रह्मचर्य महाव्रत की व्यवस्था की और महाव्रत पांच हो गये।

सूत्रकृतांग में अब्रह्मचर्य का समर्थन करने वाले को "पार्श्वस्थ"[6] कहा है। वृत्तिकार ने उन्हें "स्वयूथिक" भी बतलाया है।[7] इसका तात्पर्य यह है कि भगवान महावीर के पहले से ही कुछ "स्वयूथिक-निर्ग्रन्थ" अर्थात् पार्श्व-परंपरा के श्रमण स्वच्छंद हो कर अब्रह्मचर्य का समर्थन कर रहे थे। उनका तर्क था कि

१. स्थानांग—४/१३६
२. उत्तराध्ययन—२१/१२
३. वही—२३/१२-१३
४. वही—२३/२६-२७
५. स्थानांग—४/१३६ वृत्ति—
मैथुन परिग्रहेऽन्तर्भवति, न ह्यपरिगृहीता योषिद् भुज्यते।
६. सूत्रकृतांग—१/३/४/९, १३
७. क: सूत्रकृतांग—१/३/४/९/वृत्ति—स्वयूथ्या वा।
ख: वही—१/३/४/१२ वृत्ति—स्वयूथ्या वा पार्श्वस्थावसन्न-कुशीलादयः



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जैसे व्रण या फोड़े को दबा कर पीव को निकाल देने से शान्ति मिलती है, वैसे ही समागम की प्रार्थना करने वाली स्त्री के साथ समागम करने से शान्ति मिलती है। इसमें दोष कैसे हो सकता है ?

जैसे भेड़ बिना हिलाये शान्तभाव से पानी पी लेती है, वैसे ही समागम की प्रार्थना करने वाली स्त्री के साथ शान्त भाव से किसी को पीड़ा पहुंचाए बिना समागम किया जाय, उसमें दोष कैसे हो सकता है ?

जैसे 'कपिंजल' नाम की चिड़िया आकाश में रहकर बिना हिले-डुले जल पी लेती है, वैसे ही समागम की प्रार्थना करने वाली स्त्री के साथ अनासक्त भाव से समागम किया जाए तो उसमें दोष कैसे हो सकता है ?[8]

भगवान महावीर ने इन कुतर्कों को ध्यान में रखा और वक्रजड़ मुनि किस प्रकार अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं, इस ओर ध्यान दिया तो उन्हें ब्रह्मचर्य को स्वतंत्र महाव्रत का रूप देने की आवश्यकता हुई। इसलिए स्तुतिकार ने कहा है—

"से वारिया इत्थि सराइमंतं" : सूत्रकृतांग, १/६/२८

अर्थात्, भगवान ने स्त्री और रात्रि भोजन का निवारण किया। यह स्तुति वाक्य इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य की विशेष व्याख्या, व्यवस्था या योजना की थी।

अब्रह्मचर्य को फोड़े के पीब निकालने आदि के समान बताया जाता था, उसके लिए भगवान ने कहा—"कोई मनुष्य तलवार से किसी का सिर काट शान्ति का अनुभव करे तो क्या वह दोषी नहीं है ?"

कोई मनुष्य किसी धनी के खजाने से अनासक्त-भाव से बहुमूल्य रत्नों को चुराए तो क्या वह दोषी नहीं होगा ?

कोई मनुष्य चुपचाप शान्त-भाव से जहर की घूंट पी कर बैठ जावे तो क्या वह विष व्याप्त नहीं होगा ?[9]

दूसरे का सिर काटने वाला, दूसरों के रत्न चुराने वाला और जहर की घूंट पीने वाला वस्तुतः शान्त या अनासक्त नहीं होता, वैसे ही अब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला शान्त या अनासक्त नहीं हो सकता।

जो पार्श्वस्थ श्रमण अनासक्ति का नाम ले अब्रह्मचर्य का समर्थन करते हैं, वे काम-भोगों में अत्यंत आसक्त हैं।[10]

अब्रह्मचर्य को स्वाभाविक मानने की ओर श्रमणों का झुकाव होता जा रहा था, उस समय उन्हें ब्रह्मचर्य की विशेष व्यवस्था देने की आवश्यकता थी। इस अनुकूल परिषह से श्रमणों को बचाना आवश्यक था। उस स्थिति में भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य को बहुत महत्त्व दिया और उसकी सुरक्षा के लिए विशेष व्यवस्था दी : देखिये—उत्तराध्ययन १६ और ३२वां अध्ययन।

२. **सामायिक और छेदोपस्थापनीय**—भगवान् पार्श्व के समय सामायिक चारित्र था और भगवान् महावीर ने छेदोपस्थापनीय-चारित्र का प्रवर्तन किया। वास्तविक दृष्टि से चारित्र एक सामायिक ही है।[11] चारित्र का अर्थ है "समता की आराधना।" विषमतापूर्ण प्रवृत्तियां त्यक्त होती हैं, तब सामायिक चारित्र प्राप्त होता है। यह निर्विशेषण या निर्विभाग है। भगवान पार्श्व ने चारित्र के विभाग नहीं किए, उसे विस्तार से नहीं समझाया। सम्भव है उन्हें इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। भगवान् महावीर के सामने एक विशेष प्रयोजन उपस्थित था, इसलिए उन्होंने सामायिक को छेदोपस्थापनीय का रूप दिया। इस चारित्र को स्वीकार करने वाले को व्यक्ति या विभागशः महाव्रतों को स्वीकार कराया जाता है। छेद का अर्थ 'विभाग' है। भगवान् महावीर ने भगवान् पार्श्व के निर्विभाग सामायिक चारित्र को विभागात्मक सामायिक चारित्र बना दिया और वही छेदोपस्थापनीय के नाम से प्रचलित हुआ। भगवान् ने चारित्र के तेरह मुख्य विभाग किये थे। पूज्यपाद ने भगवान् महावीर को पूर्व तीर्थंकरों द्वारा अनुपदिष्ट तेरह प्रकार के चारित्र-उपदेष्टा के रूप में नमस्कार किया है—

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः
पंचेर्यादि समाश्रयाः समितयः पंच व्रतानीत्यपि।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दिष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीरान् नमामो वयं।।[12]

भगवती से ज्ञात होता है कि जो चातुर्याम-धर्म का पालन करते थे, उन मुनियों के चारित्र को "सामायिक" कहा जाता था और जो मुनि सामायिक-चारित्र की प्राचीन परंपरा को छोड़कर पंचयाम-धर्म में प्रव्रजित हुए उनके चारित्र को "छेदोपस्थापनीय" कहा गया।[13]

भगवान् महावीर ने भगवान् पार्श्व की परंपरा का सम्मान करने अथवा अपने निरूपण के साथ उसका सामंजस्य बिठाने के लिए दोनों व्यवस्थाएं कीं—प्रारंभ में अल्पकालीन निर्विभाग : सामायिक चारित्र को मान्यता दी,[14] दीर्घकाल के लिए विभागात्मक : छेदोपस्थापनीय : चारित्र की व्यवस्था की।[15]

८. सूत्रकृतांग–१/३/४/१० से १२
९. सूत्रकृतांग निर्युक्ति गाथा–५३-५५
१०. सूत्रकृतांग १/३/४/१३

११. विशेषावश्यक भाष्य गाथा १२६७
१२. चारित्रभक्ति ७
१३. भगवती २५/७/७८६ गाथा १, २
सामाइयंमि उ कए, चाउज्जामं अणुत्तरं धम्मं।
तिविहेणं फासयंतो, सामाइय संजमो स खलु।।
छेत्तूणं उ परियागं, पोरागं जो ठवेइ अप्पाणं।
धम्मंमि पंच जामे, छेदोपट्ठावणो स खलु।।
१४. विशेषावश्यक भाष्य गाथा १२६८
१५. वही गाथा १२७४



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. **रात्रि-भोजन-विरमण**—भगवान् पार्श्व के शासन में रात्रि-भोजन न करना व्रत नहीं था। भगवान् महावीर ने उसे व्रत की सूची में सम्मिलित कर लिया। यहां सूत्रकृतांग : १/६/२८ का वह पद फिर स्मरणीय है—"से वारिया इत्थि सराइभत्तं।" हरिभद्र सूरि ने इसकी चर्चा करते हुए बताया कि भगवान् ऋषभ और भगवान् महावीर ने अपने ऋजु-जड़ और वक्र-जड़ शिष्यों की अपेक्षा से रात्रि-भोजन न करने को व्रत का रूप दिया और उसे मूल गुणों की सूची में रखा। मध्यवर्ती तीर्थंकरों ने उसे मूलगुण नहीं माना इसलिए उन्होंने उसे व्रत का रूप नहीं दिया।[16] सोमतिलक सूरि का भी यही अभिमत है।[17]

मूलगुणेसु उ दुव्हं, सेसाणुत्तरगुणेसु निसिभुत्तं।

हरिभद्रसूरि से पहले ही यह मान्यता प्रचलित थी। जिनभद्रगणि ने लिखा है कि "रात को भोजन नहीं करना" अहिंसा व्रत का संरक्षक होने के कारण समिति की भांति उत्तर गुण है। किन्तु मुनि के लिए वह अहिंसा महाव्रत की तरह पालनीय है। इस दृष्टि से वह मूलगुण की कोटि में रखने योग्य है।[18] श्रावक के लिए वह मूलगुण नहीं हैं।[19] जो गुण साधना के आधारभूत होते हैं, उन्हें "मौलिक" या "मूलगुण" कहा जाता है। उनके उपकारी या सहयोगी गुणों को "उत्तरगुण" कहा जाता है। जिनभद्र गणी ने मूलगुण की संख्या ५ और ६ दोनों प्रकार से मानी है:—

| | |
|---|---|
| १. अहिंसा | ४. ब्रह्मचर्य |
| २. सत्य | ५. अपरिग्रह[20] |
| ३. अचौर्य | ६. रात्रि-भोजन-विरमण[21] |

आचार्य वट्टकेर ने मूलगुण २८ माने हैं—

| | |
|---|---|
| पांच महाव्रत | अस्नान |
| पांच समितियां | भूमिशयन |
| पांच इन्द्रिय-विजय | दन्तधर्षन का वर्जन |
| षड् आवश्यक | स्थिति भोजन |
| केश लोच | एक भुक्त |
| अचेलकता[22] | |

१६. दशवैकालिक, हारिभद्रीय वृत्ति प. १५०
एतच्च रात्रिभोजनं प्रथमचरमतीर्थंकरतीर्थयोः ऋजुजड़वक्रजड़पुरुषापेक्षया मूलगुणत्वख्यापनार्थं महाव्रतोपरि पठितं, मध्यम तीर्थंकरतीर्थेषु पुनः ऋजुप्रज्ञ पुरुषापेक्षयोत्तरगुणवर्गे इति।

१७. सप्ततिशत स्थान गाथा २८७
मूलगुणेषु उ दुव्हं सेसाणुत्तरगुणेसु निसिभुत्तं।

१८. विशेषावश्यक भाष्य गाथा १२४७ वृत्तिः
उत्तरगुणत्वे सत्यपि तत् साधोर्मूलगुणो भण्यते। मूलगुणपालनात् प्राणातिपातादिविरमणवत् अन्तरंगत्वाच्च।

१९ विशेषावश्यक भाष्य गाथा १२४५-१२५०

२०. वही गाथा १२४४ सम्मत समेयांइ, महव्वयाणुव्वयाइ मूलगुणा।

२१. वही गाथा १८२९ मूलगुण छव्वयाइं तु

२२. मूलाचार ११२-११३

महागुणों की संख्या सब तीर्थंकरों के शासन में समान नहीं रही, इसका समर्थन भगवान् महावीर के निम्न प्रवचन से होता है:—

"आर्यो १—मैंने पांच महाव्रतात्मक, सप्रतिक्रमण और अचेल धर्म का निरूपण किया है। आर्यो—मैंने नग्नभाव, मुण्डभाव, अस्नान, दन्तप्रक्षालन-वर्जन, छत्र-वर्जन, पादुका-वर्जन भूमि-शय्या, केश-लोच आदि का निरूपण किया है।[23]

भगवान् महावीर के जो विशेष विधान हैं, उनका लंबा विवरण स्थानांग—९/६९३ में है।

४. **सचेल और अचेल**—गौतम और केशी के शिष्यों के मन में एक वितर्क उठा था—

"महामुनि वर्द्धमान ने जो आचार धर्म की व्यवस्था की है, वह अचेलक है और महामुनि पार्श्व ने जो यह आचार धर्म की व्यवस्था की है, वह वर्ष आदि से विशिष्ट तथा मूल्यवान वस्त्रवाली है। जबकि हम एक ही उद्देश्य से चले हैं तो फिर इस भेद का क्या कारण हैं? "केशी ने गौतम के सामने वह जिज्ञासा प्रस्तुत की और पूछा—"मेधाविन्! वेष के इन प्रकारों में तुम्हें संदेह कैसे नहीं होता।"

"केशी के ऐसा कहने पर गौतम ने इस प्रकार कहा—"विज्ञान द्वारा यथोचित जानकर ही धर्म के साधनों—उपकरणों की अनुमति दी गई है। लोगों को यह प्रतीत हो कि ये साधु, हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना की गई है। जीवन-यात्रा को निभाना और "मैं साधु हूँ" ऐसा ध्यान आते रहना वेष-धारण के इस लोक में ये प्रयोजन हैं। यदि मोक्ष की वास्तविक साधना की प्रतिज्ञा हो तो निश्चय-दृष्टि में उसके साधन, ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही हैं।[24]

भगवान् पार्श्व के शिष्य बहुमूल्य और रंगीन वस्त्र रखते थे। भगवान् महावीर ने अपने शिष्यों को अल्पमूल्य और श्वेत वस्त्र रखने की अनुमति दी।

डा. हर्मन जेकोबी का यह मत है कि भगवान् महावीर ने अचेलकता या नग्नत्व का आचार आजीवक आचार्य गोशालक से ग्रहण किया।[25] किन्तु यह संदिग्ध है। भगवान् महावीर के काल में और उनसे पूर्व भी नग्न साधुओं के अनेक सम्प्रदाय थे। भगवान् महावीर ने अचेलकता को किसी से प्रभावित होकर अपनाया या अपनी स्वतंत्र बुद्धि से, इस प्रश्न के समाधान का कोई निश्चित स्रोत प्राप्त नहीं है। किन्तु इतना निश्चित है कि महावीर दीक्षित हुए तब सचेल थे, बाद में अचेल हो गये। भगवान् ने अपने शिष्यों

२३. स्थानांग ९/६२

२४. उत्तराध्ययन २३/२९-३३

२५. दी सेक्रेड बुक आफ दी ईस्ट, भाग ४५ पृ. ३२
It is probable that he borrowed then from the Ake'lakas or Agivakas, the followers of Gosala.



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए भी अचेल आचार की व्यवस्था की, किन्तु उनकी अचेल व्यवस्था दूसरे-दूसरे नग्न साधुओं की भांति एकान्तिक आग्रहपूर्ण नहीं थी। गौतम ने केशी से जो कहा, उससे यह स्वयं सिद्ध है।

जो निर्ग्रन्थ निर्वस्त्र रहने में समर्थ थे, उनके लिए पूर्णतः अचेल (निर्वस्त्र) रहने की व्यवस्था थी और जो निर्ग्रन्थ वैसा करने में समर्थ नहीं थे, उनके लिए सीमित अर्थ में सचेलक, अल्पमूल्य और श्वेत वस्त्रधारी रहने की व्यवस्था थी।

भगवान् पार्श्व के शिष्य भगवान् महावीर के तीर्थ में इसलिए खप सके कि भगवान् महावीर ने अपने तीर्थ में सचेल और अचेल इन दोनों व्यवस्थाओं को मान्यता दी थी। इस सचेल और अचेल के प्रश्न पर ही निर्ग्रन्थ-संघ श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दो शाखाओं में विभक्त हुआ था। श्वेताम्बर साहित्य के अनुसार जिन-कल्पी साधु वस्त्र नहीं रखते थे। दिगम्बर साहित्य के अनुसार सब साधु वस्त्र नहीं रखते थे। इस विषय पर पार्श्ववर्ती परंपराओं का भी विलोकन करना अपेक्षित है।

पूरणकश्यप ने समस्त जीवों का वर्गीकरण कर छह अभिजातियाँ निश्चित की थी।[26] उसमें तीसरी लोहित्याभिजाति में एक शाटक रखनेवाले निर्ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[27]

आचारांग में भी एक शाटक रखने का उल्लेख है।[28] अंगुत्तर-निकाय में निर्ग्रन्थों के नग्न रूप को लक्षित करके ही उन्हें "अह्रीक" कहा गया है।[29] आचारांग में निर्ग्रन्थों के लिए अचेल रहने का भी विधान है।[30] विष्णु-पुराण में साधुओं के निर्वस्त्र और सवस्त्र दोनों रूपों का उल्लेख मिलता है।[31]

इन सभी उल्लेखों से यह जान पड़ता है कि भगवान् महावीर के शिष्य सचेल और अचेल-इन दोनों अवस्थाओं में रहते थे। फिर भी अचेल अवस्था को अधिक महत्व दिया गया, इसीलिए केशी के शिष्यों के मन में उसके प्रति एक वितर्क उत्पन्न हुवा था। प्रारंभ से अचेल शब्द का अर्थ निर्वस्त्र ही रहा होगा। और दिगंबर-श्वेतांबर संघर्ष-काल में उसका अर्थ 'अल्प वस्त्र वाला' या 'मलिन वस्त्र वाला' हुआ होगा, अथवा एक वस्त्रधारी निर्ग्रन्थों के लिए अचेल का प्रयोग हुआ होगा। दिगंबर परंपरा ने निर्वस्त्र रहने का एकान्तिक आग्रह किया और श्वेतांबर-परंपरा ने निर्वस्त्र रहने की स्थिति के विच्छेद की घोषणा की। इस प्रकार सचेल और अचेल का प्रश्न भगवान् महावीर ने जिसको समाहित किया था, आगे चल कर विवादास्पद बन गया। यह विवाद अधिक उग्र तब बना जब आजीवक श्रमण दिगंबरों में विलीन हो रहे थे। तामिल काव्य "मणिमेखले" में जैन श्रमणों को निर्ग्रन्थ और आजीवक—इन दो भागों में विभक्त किया गया है। भगवान् महावीर के काल में आजीवक एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था। अशोक और दशरथ के "बराबर" तथा "नागार्जुनी गुहा-लेखों" से उसके अस्तित्व की जानकारी मिलती है। उन श्रमणों को गुहाएं दान में दी गई थी।[32] संभवतः ई. स. के आरंभ से आजीवक मत का उल्लेख प्रशस्तियों में नहीं मिलता। डा. वासुदेव उपाध्याय ने संभावना की है कि आजीवक ब्राह्मण मत में विलीन हो गये।[33] किन्तु मणिमेखले से यह प्रमाणित होता है कि आजीवक-श्रमण दिगंबर श्रमणों में विलीन हो गये।[34]

आजीवक नग्नत्व के प्रबल समर्थक थे। उनके विलय होने के पश्चात् सम्भव है कि दिगंबर परंपरा में भी अचेलता का आग्रह हो गया। यदि आग्रह न हो तो सचेल और अचेल-इन दोनों अवस्थाओं का सुन्दर सामंजस्य बिठाया जा सकता है, जैसा कि भगवान् महावीर ने बिठाया था।

५. **प्रतिक्रमणः**—भगवान पार्श्व के शिष्यों के लिए दोनों संध्याओं में प्रतिक्रमण करना अनिवार्य नहीं था। जब कोई दोषाचरण हो जाता, तब वे उसका प्रतिक्रमण कर लेते। भगवान् महावीर ने अपने शिष्यों के लिए दोनों संध्याओं में प्रतिक्रमण करना अनिवार्य कर दिया, भले ही फिर कोई दोषाचरण हुआ हो या न हुआ हो।[35]

६. **अवस्थित और अनवस्थित कल्पः**—भगवान पार्श्व और भगवान् महावीर के शासन-भेद का इतिहास दस कल्पों में मिलता है। उनमें से चातुर्याम धर्म, अचेलता प्रतिक्रमण पर हम एक दृष्टि डाल चुके हैं। भगवान् पार्श्व के शिष्यों के लिए—१—शय्यातर-पिण्ड : उपाश्रयदाता के घर का आहार न लेना। २—चातुर्याम धर्म का पालन करना। ३—पुरुष को ज्येष्ठ मानना। ४—दीक्षा पर्याय में बड़े साधुओं को वंदन करना। ये चार कल्प अवस्थित थे। १—अचेलता, २—औदेशिक, ३—प्रतिक्रमण, ४—राज-पिण्ड, ५—मासकल्प, ६—पर्यूषण कल्प। ये छहों कल्प अनवस्थित थे, ऐच्छिक थे। भगवान महावीर के शिष्यों के लिये ये सभी कल्प अवस्थित थे, अनिवार्य थे।[36] परिहार विशुद्ध चारित्र भी भगवान् महावीर की देन थी। इसे छेदोपस्थापनीय चारित्र की भाँति 'अवस्थित कल्पी' कहा गया है।[37] □

---

२६. अंगुत्तरनिकाय ६।६३, छलभिजातिसुत्त, भाग ३, पृ. ८६
२७. वही ६।६।३ तत्रिदं भन्ते, पुराणेन कस्सपेन लोहिताभिजाति पज्जत्ता, निगण्ठा एक साटका।
२८. आचारांग १।८।४।५२ अदुवा एग साडे
२९. अंगुत्तरनिकाय, १०।८।८, भाग ४, पृ. २१८ अहिरिका भिक्खवे निगण्ठा
३०. आचारांग १।८।४।५३ अदुवा अचेले।
३१. विष्णु पुराण अंश ३, अध्याय १८, श्लोक १०
३२. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन खंड २, पृ. २२
३३. वही पृ. १२६
३४. बुद्धिस्ट स्टडीज पृ. १५
३५. क : आवश्यक निर्युक्ति १२४४
ख : मूलाचार ७/१२५-१२९
३६. भगवती २५/७/७८७ : सामाइय संजमे णं भंते कि ठियकप्पे होज्जा अट्ठियकप्पे होज्जा ? गोयमा ठियकप्पे वा होज्जा अट्ठियकप्पे वा होज्जा। छेदोवट्ठावणिय संजए पुच्छा, गोयमा ठियकप्पे होज्जा नो अट्ठियकप्पे होज्जा
३७. भगवती २५-७/७८७



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org